पौराणिक सृष्टिप्रक्रिया

प्रो. (डॉ.) सरोज कौशल
संस्कृत विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन करते हुए पुराणकारों ने बताया है, कि सृष्टि से पूर्व एकमात्र ब्रह्म तत्त्व ही था। यह ब्रह्म रूप, रस तथा वर्ण से रहित एवं नित्य तत्त्व था जिसे विष्णु, वासुदेव आदि नामों से कहा गया है। वही व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और काल इन चार रूपों में स्थित है। विष्णु के उपाधिरहित स्वरूप से पुरुष तथा प्रधान ये दो रूप उत्पन्न हुए। प्रधान व पुरुष ये दोनों तत्त्व सृष्टि के आरम्भ होने पर उस परम तत्त्व से प्रादुर्भूत होकर पृथक् हो जाते हैं और प्रलयकाल में पुनः उसी में लीन हो जाते हैं। ये दोनों रूप जिसके द्वारा अलग किये जाते हैं और धारण किये जाते हैं, परम पुरुष का वह रूप कालसंज्ञक है। काल रूप भगवान् अनादि व अनन्त हैं इसीलिये सृष्टि, स्थिति व प्रलय का क्रम भी सदैव चलता रहता है। प्रलयावस्था में गुणसाम्य होने पर पुरुष प्रकृति से पृथक् रहने लगता है, तदनन्तर सृष्टिकाल आने पर परब्रह्म परमात्मा अपनी इच्छानुसार परिणामिनी प्रकृति और अपरिणामी पुरुष में प्रविष्ट होकर क्षोभ उत्पन्न करता है -

ततस्तु तत्परं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः।
सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः।।

प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययम्।।

परमात्मा इस क्षोभ में सांनिध्यमात्र से कारण है। इस क्षोभ के लिये उसमें क्रियाशीलता या कर्तृत्वरूपी परिणाम नहीं होता। जैसे गन्ध के समीप रहने पर मन में स्वतः क्षोभ उत्पन्न हो जाता है, किन्तु अचेतन गंध मन के क्षोभ का प्रेरक नहीं होता। वस्तुतः परमेश्वर ही संकोच व विकास के द्वारा क्षोभक तथा क्षोभ्य है और वही प्रधान रूप में भी संस्थित होता है। आकाशादि पंच महाभूत, ब्रह्मा आदि समस्त जीव तथा व्यक्त सृष्टि के बीच परमेश्वर ही स्थित है।

सृष्टिकाल आने पर गुणसाम्यरूपा प्रकृति तथा पुरुष के क्षोभ से महत् तत्त्व का विकास होता है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है, इसलिये उससे विकसित होने वाला महत् तत्त्व भी त्रिगुणात्मक होता है। महत् तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है और यह भी अपने कारणगुणानुसार त्रिगुणात्मक होता है। यह अहंकार ही पंचतन्मात्राओं तथा एकादश इन्द्रियों का कारण माना

गया है। यह अहंकार महत् तत्त्व से आवृत्त होता है। आकाशादि पंचभूत परस्पर संयुक्त होकर ही सृष्टि करते हैं। ये सभी तत्त्व पुरुष से अधिष्ठित होकर प्रकृति के अनुग्रह से महत् से लेकर विषय पर्यन्त तत्त्वों द्वारा एक ब्रह्माण्ड रूप अण्ड को उत्पन्न करते हैं।

पुराणों में प्रधानरूप से सृष्टि का प्रतिपादन सांख्यमतानुसार किया गया है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पौराणिक सृष्टिप्रक्रिया सांख्य में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया का अक्षरशः अनुवाद है। आधुनिक प्रचलित निरीश्वर सांख्यसिद्धान्त से इसमें मौलिक भेद है और वह यह है, कि पौराणिक सृष्टि में प्रकृति के क्षोभक परमात्मा की सत्ता मानी गयी है। आधुनिक प्रचलित सांख्यदर्शन तथा ईश्वरकृष्णरचित सांख्यकारिका में प्रतिपादित सांख्यदर्शन ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करता और स्वतन्त्र प्रकृति को ही सृष्टि में कारण मानता है। अचेतन प्रकृति प्रेरक के बिना सृष्टि कैसे कर सकती है? इस प्रश्न का समाधान निरीश्वर सांख्यदर्शन ने यह किया है, कि जिस प्रकार वत्स के पोषण के लिये अचेतन दूध में बिना किसी प्रेरणा के प्रवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार अचेतन प्रकृति भी बिना किसी परमात्मा आदि प्रेरक तत्त्व की प्रेरणा के पुरुष के मोक्ष और अपवर्गरूप प्रयोजनवश सृष्टि करने में प्रवृत्ति होती है -

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥

पुराणों में प्रतिपादित सृष्टि में प्रकृति के क्षोभ का कारण स्पष्ट रूप से परमात्मा को बताया गया है।

एक अन्तर और है, वह यह कि पुराणों के अनुसार राजस अहंकार से इन्द्रियों की तथा सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं की उत्पत्ति बतायी गयी है, जबकि सांख्य में सात्विक अहंकार से ही ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति बतायी गयी है -

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहंकाराद्

यहां हमें पुराणप्रतिपादित सिद्धान्त ही समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि इन्द्रियाँ कारण हैं और कारण क्रिया का साधन मात्र होता है। कारणों में जो प्रकाश तत्त्व है, वह उनके अधिष्ठाता देवताओं से ही प्राप्त होता है, इसलिये ऐतरेय उपनिषद् में यह स्पष्ट बताया गया है, कि अग्नि आदि देवता इन्द्रियों के छिद्रों में प्रविष्ट हुए और उन्हीं देवताओं से उन्हें तत्-तत् विषयों का ग्राहित्व रूप प्राप्त हुआ, अतः इन्द्रियों का तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं का भेद मानना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है, जब सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं की तथा राजस अहंकार से इन्द्रियों की उत्पत्ति मानी जाए।

ऊपर बताया जा चुका है, कि पारस्परिक संयोग के बिना तत्त्व सृष्टिकार्य करने में असमर्थ होते हैं, अतः ये तत्त्व एक दूसरे का आश्रय ग्रहण कर, पुरुष को अधिष्ठाता मान कर तथा सूक्ष्म प्रकृति की सहायता से एक अण्ड का निर्माण करते हैं। यह अण्ड एक बुद्बुद के समान जल के मध्य में स्थित रहता है। कहा जाता है, कि चाहे सृष्टिकर्त्ता हिरण्यमय अण्ड हो या ब्रह्माण्ड रूपी अण्ड हो अथवा माता के उदर में जरायु से घिरा हुआ बालरूपी अण्ड हो सभी के जन्म व वृद्धि की प्रक्रिया लगभग समान ही होती है। अण्ड के लिये कहा गया है, कि वह जल में रह कर ही वृद्धि को प्राप्त होता है, यथा -

एकसंघातचिह्नाश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।।
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ।
जलबुद्बुदवत्क्षेत्रे क्रमात् ते वृद्धिमाप्नुवन्
भूतेभ्योण्डं महावृद्धं बृहत्तदु वै त्वक्षयम्।
प्रवृत्तेऽण्डे विवृद्धः सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः।।

अण्ड सृष्टि में पुरुष व प्रकृति सम्मिलित रूप से निवास करते हैं। यही जीवन का मूल स्रोत है ओर इसी देवतत्त्व या प्राणतत्त्व के निवास से जीवन की सम्भूति एक तथ्य है। अव्यक्त प्रकृति पहले तो साम्यावस्था में रहती है, पर त्रिगुणमयी होने से कालान्तर में गुणों की विषमता को प्राप्त करती है। यही वैषम्य मनस्तत्त्व व पंचभूतों में विकसित होकर अण्ड-निर्माण का कारण बनता है। अण्ड शरीर है इसलिये उसमें रहने वाले पुरुष को शरीरी कहते हैं और मूल वैदिक सिद्धान्त भी यही है, कि ब्रह्म या चैतन्य पुरुष ही अण्ड में प्रविष्ट होकर भूतों का आदिकर्त्ता बनता है। इस तथ्य पर ही पौराणिक दर्शन की सृष्टि-प्रक्रिया आधारित है।

यह विश्व अण्ड सप्त आवरणों से ढका रहता है । वे आवरण जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महतत्त्व तथा मूल प्रकृति हैं। ये क्रमशः उत्तरोत्तर दस गुणा परिमण से एक दूसरे को आवृत्त किये रहते हैं, जैसा कि नीचे स्पष्ट किया जा रहा है -

सर्ग रचना -

पुराणों में सृष्टि को तीन प्राकृत सर्ग, पांच वैकृत सर्ग तथा एक प्राकृतवैकृत सर्ग इस प्रकार नौ भेदों में वर्गीकृत किया गया है। जैसा कि निम्न पुराणवचन से स्पष्ट है -

पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।।

प्राकृत सर्ग -

प्राकृताश्च त्रयः पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वका।

प्राकृत सर्ग तीन प्रकार के होते हैं और इनकी रचना अबुद्धिपूर्वक होती है।

1. ब्रह्म सर्ग -

प्रकृति से पहली सृष्टि महत् की है प्रकृति व पुरुष के संयोग से ही इसकी उत्पत्ति होती है और सत्वादि गुणों की विषमता से ही यह प्रकट होता है। महत् और ब्रह्म पर्यायवाची शब्द हैं, जैसा कि तत्त्वसमाससूत्र की व्याख्या में कहा है। गीता में भी महान् को ब्रह्म कहा गया है। जैसे -

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।

इसीलिए महत्सर्ग को ब्रह्मसर्ग कहा जाता है।

2. भूत सर्ग -

दूसरा प्राकृत सर्ग भूतसर्ग है। भूत शब्द से शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध इन पंच तन्मात्राओं का ग्रहण है। पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति इस सर्ग में मानी गयी है। सांख्य में इसे अविशेष पद से व्यपदिष्ट किया गया है -

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पंच पंचभ्यः।

3. वैकारिक सर्ग -

तीसरा प्राकृत सर्ग वैकारिक सर्ग है। इन्द्रियसर्ग को वैकारिक सर्ग कहते हैं। अहंकार के तामस रूप से पंच तन्मात्राओं तथा सात्त्विक रूप से इन्द्रियों की सृष्टि होती है। इन्द्रियाँ संख्या में ग्यारह हैं - पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक मन। चक्षुः श्रोत्र घ्राण रसना वाक् ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं तथा वाक्, पाणि, पाद पायु, उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं। चक्षुरादि पंच ज्ञानेन्द्रियाँ रूपादिज्ञान का साधन होने से ज्ञानेन्द्रियां कहलाती हैं तथा वागादि पांच इन्द्रियां वचनादि क्रिया साधन होने से कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं। इन 11 इन्द्रियों का सर्ग ही वैकारिक सर्ग रूप तृतीय प्राकृत सर्ग है।

वैकृत सर्ग -

बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्या: पंचवैकृता:।

वैकृत सर्गों की रचना बुद्धिपूर्वक होती है और ये संख्या में पांच हैं।

1. मुख्य सर्ग -

ब्रह्माजी ने जब पुनः सृष्टि करने का चिन्तन किया तो तमोमयी सृष्टि हुई। यह सृष्टि प्रधान के समकाल ही हुई। अर्थात् तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र ये पांच प्रकार की अविद्याएं उस महात्मा (ब्रह्म) से प्रादुर्भूत हुई जैसा कि पुराण में कहा है -

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञित:।
अविद्या पंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मन:।।

सांख्यकारिका में अविद्या को तम, मोह आदि भेद से पंचपर्वा बतलाया गया है। यही तमोमयी जड़ सृष्टि मुख्यसर्ग के नाम से कही जाती है - 'मुख्या वै स्थावरा: स्मृता:।' इसमें वृक्ष, लता, तृण आदि ग्राह्य हैं। इनका संचार नीचे से ऊपर की ओर होता है, साथ ही इनमें ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं होती। ये स्पर्श मात्र का अनुभव करते हैं।

2. तिर्यक् सर्ग -

चर सृष्टि का यह प्रथम सर्ग है। ये जीव तिरछी गति का अवलम्बन करते हैं। पशु पक्षी इसी सर्ग में ग्राह्य हैं। ये तमोमय, अज्ञानी तथा अनुचित मार्ग पर चलने वाले होते हैं। अभिमानी तथा एक दूसरे की प्रवृत्ति को जानने में असमर्थ होते हैं। ये केवल खाना, पीना, सोना व मैथुन करना ही जानते हैं। श्रीमद्भागवत में इस सर्ग के 28 प्रकार बताये गये हैं।

3. देवसर्ग -

उपर्युक्त सर्ग की रचना करने के बाद भी ब्रह्मा के मन में शान्ति नहीं हुई, तब उन्होंने ऊर्ध्व लोक अर्थात् ऊपर के लोकों में निवास करने वाले प्राणियों की सृष्टि की। ये सत्त्वगुण की प्रधानता रखने वाले तथा बाहरी व भीतरी प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। मार्कण्डेयपुराण में इस सर्ग का वर्णन करते हुए बताया गया है -

ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोद् र्ध्वमवर्तत।
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृता:।।

प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतःसमुद्भवाः।
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गादि स स्मृतः।।

भागवत में देवसृष्टि आठ प्रकार की बतायी गयी है।

4. मानुष सर्ग -

देवसृष्टि करने के बाद ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए, पर फिर भी उन्होंने कार्य करने योग्य रचना का ध्यान किया और माया अर्थात् अव्यक्त से अर्वाक् स्रोत अर्थात् मनुष्यों की सृष्टि की। ये पृथिवी पर घूमने वाले जीव हुए। इनमें पुरुष-भेद से सत्त्व, रज व तम तीनों गुणों का आधिक्य होता है। सत्त्वगुण का आधिक्य होने से वे प्रकाशबहुल होने पर भी रजोगुण का मिश्रण होने से दुःख बहुल कहलाये।

ते च प्रकाशबहुलास्तमःसत्त्वरजोविलाः ।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः।।

5. अनुग्रह सर्ग -

अनुग्रहसर्ग विपर्यय, सिद्धि, तुष्टि, शक्ति भेद से चार प्रकार का है। वायुपुराण में बताया गया है कि स्थावरों में विपर्यय, तिर्यग्योनि में अशक्ति, मनुष्यों में सिद्धि तथा देवों में तुष्टि होती है -

स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिष्वशक्तिता।
सिद्धिस्थाना मनुष्यास्तु तुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः।।

सांख्यकारिका में अनुग्रह सर्ग को प्रत्यय सर्ग के नाम से वर्णित किया गया है और उसे चार प्रकार का प्रतिपादित किया गया है -

एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य भेदास्तु पंचाशत्।।

कौमार सर्ग -

यह प्राकृत - वैकृत अर्थात् उभयात्मक है। कौमार सर्ग का तात्पर्य यहां सनत्कुमार संहिता से लिया गया है जैसा कि भागवत में भी कहा गया है -

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम्।।

इस सर्ग के विषय में टीकाकारों के विविध मत प्राप्त होते हैं। विश्वनाथ चक्रवर्ती का कहना है, कि ध्यानपूत मन से अन्य व्यक्तियों की सृष्टि हुई तथा कुमारों की सृष्टि भगवज्जन्य है। सुबोधिनी में वल्लभाचार्य ने सनत्कुमार के देवत्व व मनुष्यत्व इस द्विविधत्व का हेतु खोज निकाला है। इस प्रसंग का भागवत टीकाकार शुकदेवाचार्य ने खण्डन किया है, उनका कहना है, कि सनत्कुमार कभी मनुष्यों की कोटि में नहीं आये। इनका एक बार जन्म तो ब्रह्मा से हुआ तथा प्रत्यहं प्रादुर्भूत होने से ये चिरस्थायियों में अन्यतम हैं, इसी कारण ये प्राकृत व वैकृत उभयरूपात्मक है।

लगभग सभी महापुराणों में नव सर्गों की संख्या मान्य है, किन्तु श्रीमद्भागवत में यह संख्या दस बतायी गयी है। वहाँ सर्गों की रचना इस प्रकार है - 1. महत् सर्ग, 2. अहंकार सर्ग, 3. भूत सर्ग, 4. इन्द्रियसर्ग 5. इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं का सर्ग, 6. अविद्या सर्ग, 7. प्रधान सर्ग या मुख्य सर्ग, 8. तिर्यग्योनि सर्ग, 9. मनुष्यसर्ग, 10. कौमार सर्ग।

इस प्रकार उपर्युक्त सर्गों की रचना कर ब्रह्मा ने नाना प्रकार के प्राणियों की सृष्टि की, जिनमें असुर, सुर, पितर व मनुष्य मुख्य हैं।

पुराणों के अनुसार आनन्तरीय जीवसृष्टि कर्मानुसार होती है। प्राणी अपने पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों से अच्छी प्रवृत्ति या योनि पाते हैं और बुरे कर्मों से बुरी प्रवृत्ति व बुरी आकृति या योनि पाते हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है -

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः।।

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते।।

जब प्रलय काल में सब प्रकार की प्रजा नष्ट हो गयी, तो ब्रह्माजी ने पुनः सृष्टि करने की इच्छा की और तब उन्होंने अपने अंश को जल में डाला। जब ब्रह्माजी में तमोगुण का आधिक्य हुआ, तब सबसे पहले उनकी जंघाओं से असुरों की उत्पत्ति हुई। इन असुरों को जन्म देने के बाद ब्रह्मा ने अपने तमोमय शरीर का त्याग कर दिया, जिससे रात्रि की उत्पत्ति हुई। इसके बाद ब्रह्मा ने सत्त्वगुणी शरीर धारण किया और उनके मूल से सुरों की उत्पत्ति हुई, फिर उस शरीर को भी त्याग दिया, इस त्यागे हुए शरीर से दिन उत्पन्न हुआ, फिर अन्य सत्वमय शरीर धारण कर पितरों को अपने पार्श्व से रचा और वह छोड़ा गया

शरीर दिवस-रात्रि के बीच स्थित संध्या काल हुआ। इसके बाद रजोगुण युक्त देह धारण करके रजोगुण का आधिक्य रखने वाले मनुष्यों को रचा और उस त्यागे हुए शरीर से ज्योत्स्ना काल हुआ। ये सभी अपने-अपने काल में अधिक बलशाली होते हैं - जैसे असुर रात्रि में और देवता दिन में।

उपर्युक्त पौराणिक आख्यान का तात्पर्य यह है, कि प्रकाश-प्राणमय देवों की सृष्टि प्रकाशरूप सूर्य व दिन से तथा तमः प्राणमय असुरों की उत्पत्ति तमोमय अन्धकार एवं रात्रि से हुई।

सन्दर्भ -

१ विष्णुपुराण, 1/2/14
२ विष्णुपुराण, 1/2/28-29
३ एते सप्तमहात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।
पुरुषाधिष्ठितत्त्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते।। - कूर्मपुराण 4/34-35
४ सांख्यकारिका, 57
५ विष्णुपुराण, 1/2/29
६ भूततन्मात्रसर्गोऽयमहंकारात्तु तामसात्।।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश।। - विष्णुपुराण, 1/2/46
७ सांख्यकारिका-25
८ विष्णुपुराण 1/5/24
९ मनो मतिर्महान् ब्रह्मा पूर्ववद्वृत्तिः स्थितिः प्रज्ञा सन्ततिः स्मृतिरिति तस्याः पर्याया:। - तत्त्वसमास, पृ.सं. 268
१० श्रीमद्भागवद्गीता, 14/3
११ सांख्यकारिका, 38
१२ वायुपुराण, 6/35
१३ भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः।। - सांख्यकारिका, 48
१४ तिरश्चामष्टमः सर्ग सोऽष्टाविंशद्विधो मतः।

अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हुतवेदिनः।।
गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो कृषा:।
द्विशफाः पशवश्चेमे अविकृष्टाश्च सत्तम।।
खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा।
एते चैकशफाः क्षात्रः शृणु पंचनखान् पशून् ।।
श्वा शृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ।
सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा चमरुरादयः।।
कंकगृध्र वटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः
हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः।। - भागवतपुराण, 3/10/20-28

१५ मार्कण्डेय पुराण 39/22-23

१६ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चोरगा:।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च विषाघ्ना किन्नरादयः। - भागवतपुराण 3/10/27-28

१७ वायुपुराण, 6/50

१८ वही, 6/63

१९ सांख्यकारिका, 46

२० श्रीमद्भागवत, 1/3/6

२१ तेषां भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यांस्ततोऽसृजदिति अग्निनोक्तेर्भगवद्ध्यानजन्यत्वेन भगवज्जन्यत्वाच्च प्राकृतो वैकृतश्चेति। - विश्वनाथ चक्रवर्ती की व्याख्या (भाग-3/10/26)

२२ इन टीकाकारों के मतों के लिये द्रष्टव्य दशटीका समन्वित भागवत (वृन्दावन से प्रकाशित), तृतीय स्कन्ध, पृ.सं. 242

२३ श्रीमद्भागवत, 3/10

२४ विष्णुपुराण, 1/5/61-62

२५ मार्कण्डेयपुराण, 40/2-16

२६ रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, पृ. 794